*लोकतंत्र, समावेशन और समृद्धि**

रघुराम जी. राजन

नव चिंतन के इस पर्व में मुझे आमंत्रित करने के लिए धन्यवाद। चूंकि यह पर्व नये चिंतन का त्योहार है इसलिए मैं आपको मौद्रिक नीति के बारे में रिज़र्व बैंक के विचार बताकर आपके ऊपर कोई बोझ नहीं डालना चाहता क्योंकि वह तो अब सभी जानते हैं। बल्कि मैं कुछ ऐसी बातें करना चाहता हूं जिसके बारे में मैं वर्षों से पढ़ता रहा हूं, और वह है एक उदार लोकतांत्रिक बाज़ार का विकास। ये बातें बताते समय मैं अपना हैट पहन लूंगा ताकि मैं एक ऐसे क्षेत्र का प्रोफेसर दिखाई दूं जिसे राजनैतिक अर्थव्यवस्था कहते हैं, और थोड़े से समय के लिए मैं भारतीय रिज़र्व बैंक का हैट उतार देता हूं। यदि आप यहां इस उम्मीद से आए हैं कि ब्याज दर के बारे में कुछ और अंतर्दृष्टि प्राप्त करेंगे तो मैं क्षमा चाहता हूँ इसके लिए आपको निराशा होगी।

मैं अपनी बात उस सच्चाई से करना चाहूँगा जहां लोग एक सुरक्षित समृद्ध देश में रहना पसंद करते हैं, जहां उन्हें चिंतन और कर्म की आज़ादी हो और जहां वे सरकार बनाने के लिए अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का उपयोग कर सकें। लेकिन, राष्ट्र किस प्रकार से राजनैतिक आज़ादी और आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करते हैं? ये दोनों बातें किस प्रकार से साथ-साथ चलती हैं? इसके अलावा और ऐसी कौन-कौन सी बातें हैं, क्या भारत को यह सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि उसके पास समृद्धि और सतत राजनैतिक स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए आधारगत आवश्यक उपाय हैं? ये बहुत बड़े प्रश्न हैं, और इन प्रश्नों के स्वरूप को देखते हुए इन्हें एक भाषण में समेटना मुश्किल है। इसलिए मैं आज जो बातें कहने जा रहा हूं आप इस चर्चा में उसे मेरा योगदान समझें।

उदार लोकतांत्रिक सरकार के लिए फुकुयामा के तीन स्तंभ

राजनैतिक वैज्ञानिक फ्रांसिस फुकुयामा ने अपने परामर्शदाता (मेंटर) सैम्यूल हनटिंगटन के कार्य पर आधारित पूरे विश्व में राजनैतिक प्रणाली के अस्तित्व का दो-अंकों में प्रामाणिक विश्लेषण किया है और उसका तर्क है कि ऐसे उदार लोकतंत्र जो राजनैतिक स्वतंत्रता और आर्थिक सफलता हासिल करने में सबसे बेहतर होते हैं उनके पास तीन महत्वपूर्ण स्तंभ होते हैं : एक मज़बूत सरकार, क़ानून व्यवस्था और लोकतांत्रिक जवाबदेही।[1] मैं अपनी बात संक्षेप में फुकुयामा के विचारों से प्रारंभ करना चाहता हूं। मेरा आग्रह है कि उनके विचारों को विस्तार से जानने के लिए वह पुस्तक अवश्य पढ़ें। उसके बाद मैं उसके चौथे स्तंभ के बारे में बताऊंगा, अर्थात् मुक्त बाजार, जो उदार लोकतंत्र को समृद्ध बनाने के लिए अनिवार्य है। मैं सावधान करना चाहता हूँ कि औद्योगिक राष्ट्रों में ये स्तंभ कमज़ोर पड़ रहे हैं, क्योंकि अवसरों की असमानता बढ़ती जा रही है, और मैं अपनी बात इस विचार से समाप्त करूंगा कि इसमें भारत के लिए क्या सबक है।

फुकुयामा के तीन स्तंभ को थोड़ा विस्तार से देखेंगे। मज़बूत सरकार का केवल यह अर्थ नहीं होता कि उसके पास मज़बूत सेना हो या फिर वह अपने आसूचना अस्त्रों का उपयोग सरकार के शत्रुओं को सूंघ लेने के लिए कर लेती है। बल्कि, एक मज़बूत सरकार ऐसी भी होती है जो कारगर और निष्पक्ष प्रशासन प्रदान करती है जो वह बेदाग, समर्पित और सक्षम प्रशासकों के माध्यम से करती है जो एक बेहतर गवर्नेंस प्रदान करते हैं।

कानून व्यवस्था का अर्थ है ऐसी सरकारी कार्रवाई जिसे हम भारतीय धर्म के नाम से जानते हैं - जो ऐतिहासिक एवं व्यापक रूप से नैतिक तथा सद आचरण माना जाता है, जो धार्मिक, सांस्कृतिक और न्यायिक प्राधिकारी द्वारा लागू किया जाता है।

और लोकतांत्रिक जवाबदेही का अर्थ यह है कि सरकार ऐसी हो जो लोकप्रिय हो, जिसमें लोगों को यह अधिकार हो कि वे अलोकप्रिय, भ्रष्ट या अक्षम शासकों को बाहर कर दें।

फुकुयामा इस संबंध में और बेहतर अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं बजाय सरकार के तीन परंपरागत स्तंभों के - कार्यपालक, न्यायपालिका और विधायिका - जिन्हें एक-दूसरे के साथ संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता होती है। इसके ठीक विपरीत अति स्वतंत्रतावादी विचार यह है कि अच्छी सरकार वह होती है जिसकी 'रात की पहरेदारी' न्यूनतम हो और जो प्राथमिक रूप से संविदा के निष्पादन में जीवन एवं संपत्ति अधिकारों की रक्षा करती है, या फिर अति मार्क्सवादी विचार यह है कि जैसे ही वर्ग-संघर्ष समाप्त हो जाता है, सरकार की भूमिका समाप्त हो जाती है, वहीं पर फुकुयामा ने हनटिंगटन के समान इस बात पर ज़ोर दिया है कि यहां तक कि विकसित राष्ट्रों में भी सुदृढ़ सरकार का होना महत्वपूर्ण है।

---

* डॉ. रघुराम जी. राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 20 फरवरी, 2015 को गोवा में आयोजित डी.डी. कोशांबी चिंतन पर्व में दिया गया भाषण।

[1] *राजनीति की व्यवस्था का उद्भव : मानव-पूर्व काल से फ्रांस की क्रांति तक,* लेखक-फ्रांसिस फुकुयामा, 2011, फर्रारस्ट्रास और गाइरोक्स, न्यूयार्क, *राजनैतिक व्यवस्था और राजनैतिक पतनः औद्योगिक क्रांति से लोकतंत्र के वैश्वीकरण तक,* लेखक -फ्रांसिस फुकुयामा, 2014, फर्रार स्ट्रास और गाइरोक्स, और *बदलते समाज में राजनैतिक व्यवस्था,* लेखक-सैम्यूल हनटिंगटन, 1968, येल युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हैवेन।

भले ही ठगों की या फिर मनमानी सरकार हो जो तानाशाह की तरह खाली बर्तन की तरह आवाज़ करती हो, इस प्रकार की सरकारें कमज़ोर सरकारें हैं, मज़बूत नहीं। उनकी सेना या पुलिस निहत्थे नागरिकों को डरा सकती है किंतु एक अच्छी क़ानून व्यवस्था नहीं दे सकती है या फिर एक दृढ़ संकल्प विरोधी पक्ष के सामने नहीं टिक सकती है। उनका प्रशासन एक समझदार आर्थिक नीति, अच्छे स्कूल या पीने का स्वच्छ पानी नहीं दे सकता है। एक मज़बूत सरकार में ऐसे लोग होने चाहिए जो लोगों की आवश्यकता की चीजें मुहैया करा सकें - इसके लिए विशेषज्ञता, अभिप्रेरणा और निष्ठा की ज़रूरत होती है। एक मज़बूत सरकार के महत्व को देखते हुए विकासशील देश सहायता के लिए बहुराष्ट्रीय संस्थाओं की मांग का लगातार अनुरोध करते रहे हैं ताकि उनकी गवर्नेंस क्षमता में वृद्धि हो सके।

संभव है कि एक सुदृढ़ सरकार सही दिशा में आगे न बढ़े। हिटलर ने जर्मनी को एक कारगर प्रशासन प्रदान किया था - ट्रेन ठीक समय पर चलती थीं जैसाकि हमारे देश में 1975-77 के बीच आपातकाल में चला करती थीं। उसकी सरकार मज़बूत थी, लेकिन हिटलर ने पूरे कौशल से तथा पक्के इरादे से जर्मनी को तबाही के रास्ते पर ले गया और उसने कानून व व्यवस्था को ताक़ पर रख दिया था तथा देश में चुनाव नहीं होने दिया था। यह पर्याप्त नहीं है कि ट्रेनें समय पर चलें, बल्कि यह ज़रूरी है कि वे सही-दिशा में जाएं और अपेक्षित समय पर पहुंचें। भौतिक रेल नेटवर्क को कानून व्यवस्था के समान माना तो जा सकता है, जबकि ट्रेन की समय-सारणी को लेकर लोगों का जो मत बनता है उसे लोकतांत्रिक जवाबदेही के रूप में देखा जा सकता है।

लेकिन, एक मज़बूत सरकार को सही मार्ग पर बनाए रखने के लिए हमें क़ानून व्यवस्था और लोकतांत्रिक जवाबदेही दोनों की आवश्यकता क्यों है? क्या लोकतांत्रिक जवाबदेही एक तानाशाह सरकार को नियंत्रित रखने के लिए पर्याप्त नहीं है? शायद नहीं ! हिटलर चुनकर सत्ता में आ गया, और जब तक जर्मनी में वस्तुओं का अभाव और द्वितीय विश्व युद्ध से विपरीत बदहाली की स्थिति नहीं शुरू हुई थी तब तक उसने बहुसंख्यक लोगों के समर्थन का लाभ उठाया। कानून व्यवस्था की ज़रूरत बहुसंख्य लोगों की परेशानियों को रोकने के लिए होती है जो एक लोकतंत्र में ही उत्पन्न हो सकती है, साथ ही यह भी सुनिश्चित करने के लिए कि 'खेल का बुनियादी नियम' लंबे समय तक क़ायम रहे ताकि वातावरण का अनुमान लगाया जा सके, भले ही सत्ता में चाहे जिसकी सरकार हो। यह सुनिश्चित करते हुए कि सभी नागरिक के अधिकार एवं सुरक्षा बराबर नहीं हैं, कानून व्यवस्था अल्पसंख्यक के प्रति बहुसंख्यक के व्यवहार को नियंत्रित करती है, और लोकप्रिय प्रजातांत्रिक प्रवृत्ति के विरुद्ध अनुमान लगाने योग्य आर्थिक वातावरण बनाए रखते हुए कानून व्यवस्था यह सुनिश्चित करती है कि कारोबार में लगे लोग भविष्य के लिए आज निश्चिंत होकर निवेश कर सकते हैं।

यदि इस संबंध में इसके विपरीत प्रश्न किया जाए तो क्या होगा? क्या क़ानून व्यवस्था पर्याप्त नहीं होगी ? शायद नहीं, खासतौर से गतिमान विकासशील समाज में ! क़ानून व्यवस्था धीरे-धीरे बदलने की बुनियादी आचरण संहिता प्रदान करती है जिसका उल्लंघन न तो सरकार कर सकती है और न ही नागरिकगण। लेकिन, मात्र कानून व्यवस्था, स्वयं में, नये उभरते समूहों या नई प्रौद्योगिकी या चिंतन की महत्वाकांक्षाओं को प्रश्रय दे पाने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। लोकतांत्रिक जवाबदेही यह सुनिश्चित करती है कि वह नागरिकों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए तत्पर होती है, जिससे उभरते समूह राजनीतिक बातचीत से प्रभाव ग्रहण करते हैं और अन्यों से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। यदि समूहों को यह लगता है कि उनके कार्यक्रमों को नीति में स्थान नहीं मिल पा रहा है, तब भी लोकतंत्र उन्हें इस बात का मौका देता है कि वे उनके भीतर उठ रही वाष्प को गैर-हिंसात्मक तरीके से बाहर निकाल सकें। इस तरह कानून व्यवस्था और लोकतांत्रिक जवाबदेही दोनों मिलकर एक सुदृढ़ सरकार में संतुलन बनाए रखते हैं और एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करती हैं।

ये तीन स्तंभ कहां से आये?

फुकुयामा के लेखन में इस बात पर काफी ध्यान केंद्रित किया गया है कि विभिन्न समाजों में इस प्रत्येक स्तंभों का विकास कैसे हुआ। उनका मानना है कि आज हम सरकारों का जो स्वरूप देख रहे हैं वह काफी हद तक इतिहास में मिलता है। उदाहरण के लिए, चीन में हाल में मार्क्सवादियों के सत्ता में आने से पहले चीन में लंबे समय तक अव्यवस्था व्याप्त थी, समस्त समूह एक-दूसरे से पूरी-पूरी जंग लड़ रहे थे। ऐसी बेलगाम सैनिक स्पर्धा से समूहों ने स्वयं को एक श्रेणीबद्ध सैनिक इकाइयों में संगठित कर लिया था, जिसमें शासकों के पास असीमित शक्तियां थीं। जब एक समूह वस्तुतः दूसरे समूह पर विजय प्राप्त कर लेता था, तब उसके लिए यह स्वाभाविक हो जाता था कि वह केंद्रीकृत रूप से निरंकुश शासन लागू करे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि अव्यवस्था दुबारा नहीं फैलेगी। देश के बड़े भू-भाग पर शासन करने के लिए चीन को एक सुविकसित अभिजातवर्ग के अफसरशाहों की जरूरत थी - इसलिए परीक्षा लेकर उनकी शिक्षा के आधार पर मैंड्रिन्स को चुन लिया गया। इस प्रकार चीन में जब उनमें एकता स्थापित हो गई तो वे एक सुदृढ़ बाधारहित कारगर सरकार बन गईं, और फुकुयामा का तर्क है कि पश्चिमी यूरोप या भारत की तरह उनके पास कानून व्यवस्था को

लागू करने के लिए धर्म अथवा संस्कृति जैसी शक्ति के मज़बूत वैकल्पिक स्रोत नहीं थे।

इसके विपरीत, पश्चिमी यूरोप में, ईसाई चर्च शासक को बाध्य करते हैं कि उन्हें क्या करना है। इस तरह से सैनिक प्रतिस्पर्धा के साथ कैनोन कानून द्वारा शासक पर लगाए गए नियंत्रण दोनों मिलकर एक मज़बूत सरकार और कानून व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

उनका तर्क है कि भारत में, जाति-प्रथा से श्रमिकों में विभाजन है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि देश की संपूर्ण आबादी कभी भी युद्ध प्रयास के लिए पूरी तरह समर्पित नहीं होगी। इसलिए, इतिहास उठाकर देखा जाए तो युद्ध कभी इतना विभीषक नहीं था या सरकारों के बीच सैन्य प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र नहीं थी जितना कि चीन में थी। इसके फलस्वरूप, भारत की सरकारों पर ऐतिहासिक रूप से सुदृढ़ सरकार बनाने का जो दबाव रहा है, वह समाज के सभी भागों में व्याप्त हो गया था और शांत बना रहा था। किंतु, वहीं पर शासकों के लिए प्राचीन भारतीय धर्मग्रथों में दी गई आचार संहिता किसी भी भारतीय शासकों को मनमाने ढंग से शक्ति का उपयोग करने से रोकती थी। इस प्रकार भारत में सरकार कमज़ोर होती थी और उसपर क़ानून व्यवस्था द्वारा भी बाध्यता रहती थी। फुकुयामा के अनुसार ये भिन्न-भिन्न इतिहास यह बयान करते हैं कि आज चीन की सरकार इतनी कारगर है किंतु अनियंत्रित है, जबकि भारत की सरकार की क्षमता कमज़ोर नज़र आती है लेकिन भारतीय सकरार कदाचित ही तानाशाह होती है।

इन व्यापक अनुमानों पर बहस की जा सकती है, होनी चाहिए। फुकुयामा का यह दावा नहीं है कि इतिहास ही अंतिम गंतव्य है, लेकिन उनका कहना है कि इतिहास प्रभाव डालता है। लेकिन जब लोकतंत्र की बात हो तब लंबे समय तक इतिहास और संस्कृति का दीर्घकालिक प्रभाव कम दिखाई पड़ता है जहां कुछ देश जैसे भारत ने इसके प्रभाव को पानी में तैरती बतख की तरह ग्रहण किया है। एक गतिमान जिम्मेदार लोकतंत्र का आशय यह नहीं है कि लोग प्रत्येक पांच वर्ष पर मुक्त रूप से चुनाव में मत दे सकें। इसके लिए एक खोजी कर्कश प्रेस, सार्वजनिक बहस जो राजनैतिक सुधार के लिए निषेध न की गई हो, विभिन्न चुनाव-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाली अनेक राजनीतिक पार्टियों, तथा अनेक प्रकार के गैर-सरकारी संगठन जो संगठित करने एवं हितों को प्रस्तुत करने वाली हों, का संपूर्ण मिश्रण होना चाहिए। यह अकादमिक रूप से एक बहस का स्रोत बना रहेगा कि भारत जैसे देश ने लोकतंत्र को अपनाया जबकि उसके पड़ोसी देशों ने जिनका इतिहास और विगत सांस्कृतिक स्थिति भी समान थी उन्होंने लोकतंत्र को नहीं अपनाया।

मैं इसके बारे में बात नहीं करूंगा बल्कि मैं एक अलग प्रकार के प्रश्न पर बात करूंगा जिसके बारे में फुकुयामा ने कोई समाधान नहीं दिया है। यह स्पष्ट है कि राष्ट्रों के लिए मज़बूत सरकार इसलिए चाहिए ताकि गवर्नेंस और पुख्ता हो सके। इसी प्रकार, मुक्त बाज़ार समृद्धि का आधार बनता है। लेकिन ऐसा क्यों है कि प्रत्येक धनी देश भी ऐसे उदार लोकतंत्र को अपनाता है जो क़ानून व्यवस्था के अधीन हो?

मैं इस बारे में दो बातें बताना चाहूंगा: पहली बात, लोकतांत्रिक जवाबदेही और क़ानून-व्यवस्था से उत्पन्न मुक्त उद्यमिता तथा राजनीतिक स्वंतत्रता एक-दूसरे को परस्पर मज़बूत बनाते हैं, इसलिए एक मुक्त उद्यम प्रणाली एक चौथा स्तंभ हो सकता है जो उदार बाज़ार के लोकतंत्र का आधार बन सकता है। दूसरी बात यह है कि वह आधार जिसपर चारों स्तंभ टिके हुए हैं वह मोटे तौर पर नागरिकों में आर्थिक क्षमताओं का समान वितरण करना है। यह आधार औद्योगिक देशों में टूट रहा है, जबकि इसे भारत जैसे उभरते हुए बाज़ार में और मज़बूत बनाना होगा।

मुक्त उद्यम राजनीतिक स्वतंत्रता

ऐसा क्यों है कि जिस देश में प्रतिनिधिगत लोकतंत्र उसका केंद्रीय घटक हो, उसमें राजनीतिक स्वतंत्रता और मुक्त उद्यम परस्पर समर्थनकारी होते हैं?

निःसंदेह इसमें एक मुख्य समानता हैः गतिमान लोकतंत्र और गतिमान मुक्त उद्यम प्रणाली दोनों समान स्तर पर कार्य करने की अपेक्षा करते हैं जो स्पर्धा को बढ़ावा देती है। लोकतांत्रिक परिवेश में, राजनैतिक उद्यमी अन्य राजनेताओं से नागरिकों के वोट के लिए स्पर्धा करता है, जो उसके पिछले रिकॉर्ड और भावी नीतिगत एजेंडे पर आधारित होता है। आर्थिक क्षेत्र में, प्रवतर्क अन्य उद्यमियों से उपभोक्ता के पैसे के लिए स्पर्धा करता है, जो उसके बेचे जाने वाले उत्पाद की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।

लेकिन यहां पर भी एक महत्वपूर्ण अंतर है। लोकतंत्र, प्रत्येक व्यक्ति को समान मानता है और प्रत्येक वयस्क व्यक्ति का एक वोट होता है। लेकिन, मुक्त उद्यमिता प्रणाली में, इसके विपरीत उपभोक्ता को इस आधार पर सशक्त बनाता है कि उसकी आय कितनी है और उसके पास कितनी संपत्ति है। फिर ऐसी कौनसी बात है जो मध्यम मतदाता को लोकतंत्र में अमीरों और सफल व्यक्तियों को हटाने के लिए वोट करने से रोकती है? और क्यों अमीर तथा सफल लोग साधारण मतदाता के राजनैतिक अधिकार समाप्त नहीं कर देते। इस प्रकार का मूलभूत तनाव लोकतंत्र एवं मुक्त उद्यम के बीच हाल ही में अमरीका में हुए राष्ट्रपति चुनाव के दौरान देखने में आया

क्योंकि राष्ट्रपति बाराक ओबामा ने मध्यम वर्ग से यह अपील की कि वे उनकी रुकी हुई आर्थिक बेहतरी के प्रति क्रोध प्रकट करें जबकि मैशासूट विश्वविद्यालय के गवर्नर मिट्ट रोमनी ने कारोबारी लोगों से अपील की थी जिनमें कर की ऊंची दर और बढ़ती हुई स्वास्थ्य संबंधी सब्सिडी के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया था।

मध्यम वर्ग का मतदाता अमीरों की संपत्ति उनके पास बने रहने, एवं उनपर संतुलित रूप से भार डालने की बात से एक कारण से इसलिए सहमत है कि अमीर व्यक्ति संपत्तियों को कुशलतापूर्वक संभालते हैं तथा वे नौकरी पैदा करते हैं और समृद्धि लाते हैं जिनका फायदा हर किसी को प्राप्त होता है। इसलिए यहां तक तो ठीक है कि अमीर व्यक्ति स्वयं के प्रयास से अमीर बना है और प्रतिस्पर्धा, निष्पक्ष एवं पारदर्शी बाज़ार में विजयी हो गया है, किंतु समाज उस अवस्था में अच्छी हालत में होगा यदि उसे अपनी संपदा का प्रबंधन स्वयं करने, और अपने उत्पाद का मुनासिब हिस्सा कर के रूप में विवरणी में देने की अनुमति दी जाए। लेकिन, जितना ज़्यादा ये अमीर लोग बेकार बैठे दिखेंगे या धूर्तता करेंगे - क्योंकि इनको संपत्ति या तो विरासत में मिल गई होगी या फिर दुष्टता के साथ दौलत हालिस की होगी - उतना ही मध्यम वर्ग का मतदाता उनके लिए सख्त क़ानून लाने तथा दंडात्मक कर लगाए जाने का इच्छुक होगा।

आज कुछ उभरते बाज़ारों में, जैसे - अमीरों का संपत्ति पर अधिकार को बहुत ज्यादा समर्थन प्राप्त नहीं है क्योंकि अनेक देशों के बहुत ही अमीर कुलीन-वर्ग के लोगों के बारे में यह पाया जा रहा है कि उन्होंने संदिग्ध तरीके से दौलत हासिल की है। वे अमीर इसलिए बन गए क्योंकि उन्होंने व्यवस्था का इस्तेमाल अपने हिसाब से कर लिया, न कि उन्होंने अपने कारोबार को अच्छी तरह संभाल लिया। जब सरकार बड़े पूंजीपतियों के पीछे पड़ती है तब उसके विरोध में बहुत कम आवजें उठती हैं। और जब अमीर अपनी दौलत को बचाने के लिए प्राधिकारियों के सामने माथा टेकने लगते हैं तब अफसरों की मनमानी पर लगी तगड़ी रोक कहीं गायब हो जाती है और तब सरकार और अधिक अफसरशाह होने के लिए स्वतंत्र हो जाती है।

इसके विपरीत, आप एक ऐसी प्रतिस्पर्धात्मक मुक्त-उद्यम की प्रणाली के बारे में विचार करें जिसमें सभी को समान स्तर पर कार्य करने का अधिकार हो। इस प्रकार की प्रणाली में आमतौर पर जो सबसे ज़्यादा कुशल होगा वही दौलत हासिल कर पाएगा। प्रतिस्पर्धा में जितनी निष्पक्षता होगी उतना ही उसकी वैधता का बोध बढ़ेगा। इतना ही नहीं, निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा के अंतर्गत उत्पन्न सृजनकारी विनाश प्रक्रिया गलत तरीके से विरासत में हासिल की गई दौलत को नीचे खींचती है और उसके स्थान पर नई एवं सक्रिय संपदा को स्थापित करती है। असमानता की बहुत बड़ी खाई जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनती आई है, किसी बहुत बड़े विरोध का स्रोत नहीं बनी है।

इसके विपरीत, हर कोई बिलगेट्स या नंदन नीलेकणि बनने का सपना देख सकता है। जब इस प्रकार की सर्वव्यापी महत्वाकांक्षा का आभास होने लगता है तब पूरी व्यवस्था को और अधिक लोकतांत्रिक समर्थन प्राप्त होने लगता है। तब ऐसे अमीर जो लोकप्रिय हैं, अपनी दौलत का खुलकर उपयोग मनमाने ढंग से काम करने वाली सरकार पर लगाम लगाने के लिए कर सकते हैं, कानून-व्यवस्था को समर्थन दे सकते हैं और लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। मुक्त उद्यम और लोकतंत्र दोनों एक-दूसरे को संभाल सकते हैं।

अतः, इस बात के बहुत ही गहरे कारण हैं कि लोकतांत्रिक प्रणाली क्यों संपत्ति-अधिकार एवं मुक्त उद्यम को समर्थन प्रदान करती है बजाय द्वेषपूर्ण तर्क देने के कि मत तथा क़ानून को खरीदा जा सकता है और पूंजीपति के पास ही धन होगा। इस प्रकार का द्वेषपूर्ण भाव केवल थोड़े समय के लिए ही ठीक लग सकता है। अधिक लोगों के समर्थन के बिना, दौलत को केवल बल से सुरक्षित रखा जा सकता है। अंततः, इस प्रकार की व्यवस्था में लोकतंत्र या मुक्त उद्यम का किसी भी प्रकार का अंश समाप्त हो जाता है।

आधारशिला : आर्थिक क्षमताओं का समान वितरण

विश्व के संपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र में इस बात को लेकर अत्यधिक चिंताएं जताई जा रही हैं। मुक्त उद्यम-प्रणाली तब अच्छी तरह कार्य करती है जब उसके सहभागी प्रतिस्पर्धा क्षेत्र में प्रवेश लेते हैं और बुनियादी तौर पर उन सभी को सफलता का समान अवसर उपलब्ध होता है। उसके बाद के जो कार्य करने के समान क्षेत्र हैं उसमें विजेता के लिए अमीर बनने का रास्ता उसके अत्यधिक प्रयासों, नवोन्मेष तथा कभी-कभी भाग्य पर निर्भर करता है। लेकिन सफलता, पूर्व-निर्धारित नहीं होती है क्योंकि बाज़ार के किसी भी श्रेणी के सहभागी को सैद्धांतिक रूप से प्रतिस्पर्धा में भाग लेने के लिए अलग या बढ़चढ़कर तैयार करने का कोई अवसर नहीं होता है। यदि कुछ समूहों की तैयारी के कारण आर्थिक क्षमताएं पर्याप्त रूप से भिन्न हो जाती हैं, तो फिर उसकी सफलता के लिए पहले से ही उत्पन्न अवसर की बराबरी करने के लिए समान स्तर पर कार्य करने की स्थिति पर्याप्त नहीं रह जाती। बल्कि, मुक्त उद्यम-प्रणाली में यह देखने को मिलेगा कि वह असमानुपातिक रूप से उसके पक्ष में होती है जिसकी तैयारी बेहतर होती है। लोकतंत्र प्रणाली इसका समर्थन नहीं करती है, न ही अमीरों को और न सफल लोगों की बल्कि ये लोकतंत्र को समर्थन प्रदान करते हैं।

इस प्रकार की स्थिति अनेक पश्चिमी लोकतांत्रिक राष्ट्रों में भी मौजूद है। अनेकों लोग ऐसे हैं जिनके लिए समृद्ध बनना उनके वश के बाहर की बात है, क्योंकि एक अच्छी शिक्षा देना जिसे अमीर बनने का पासपोर्ट समझा जाता है, मध्यम-वर्ग के बहुत से लोगों की सामर्थ्य से बाहर है। उच्च शिक्षा की गुणवत्तापूर्ण संस्थानों में अमीर लोगों के बच्चों का वर्चस्व है, इसलिए नहीं कि वे गलत तरीके से वहां लाए गए हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें अच्छे और महंगे स्कूलों में पढ़ाया गया है और निजी-प्रशिक्षकों से उन्होंने ट्यूशन लिया है, क्योंकि मध्यम-वर्ग के माता-पिता में उतनी क्षमता नहीं कि वे अपने बच्चों को उस प्रकार की सुविधाएं दे सकें, और यही कारण है कि वे मौजूदा प्रणाली को निष्पक्ष नहीं मानते हैं। मुक्त उद्यम प्रणाली के लिए समर्थन समाप्त होने लगा है, जैसाकि थामस पिक्केटी की पुस्तक *'21वीं शताब्दी में पूंजी'* की लोकप्रियता से स्पष्ट है, जबकि गैर-उदार पार्टियों का प्रभाव आधिकारिक एवं वाम दलों दोनों पर बढ़ रहा है जो स्पर्धा, वित्त तथा कारोबार को दबाने का वादा करते हैं। मुक्त उद्यमिता और लोकतंत्र के बीच परस्पर समर्थन का मामला प्रतिद्वंद्विता की स्थिति पैदा कर रहा है।

इसके अलावा, जनता के विभिन्न वर्गों की क्षमताएं भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए सरकार किसी पोजीशन के लिए सर्वाधिक सक्षम उम्मीदवार का चयन करना जारी रख सकती है लेकिन इससे यह जोखिम बढ़ जाएगा कि उसमें जनता के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाएगा या फिर वह क्षमता की तुलना में प्रतिनिधित्व का चयन कर सकती है जिसमें प्रभावशाली विशेषता को समाप्त कर देने का जोखिम रहेगा। इसका नियंत्रण न तो पक्षपातपूर्ण सरकार कर सकती है और न ही गैर-प्रभावी सरकार कर सकती है। और इस प्रकार सरकार की क्षमता भी चुनौतीपूर्ण हो जाती है।

अतः, औद्योगिक राष्ट्रों में समान वितरण की क्षमता संबंधी मामलों की चट्टान में दरारें पड़ने लगी हैं और उदार मुक्त बाजार के लोकतंत्र का समर्थन करने वाले चार स्तंभों ने भी अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया है। मेरा मानना है कि ये बहुत ही महत्वपूर्ण चिंताएं हैं जो आने वाले वर्षों में विश्व के समस्त राष्ट्रों में व्याप्त हो जाएंगी।

भारत के लिए सबक

मैं अपनी बात यह बताते हुए समाप्त करना चाहता हूँ कि इसमें भारत के लिए क्या सबक है। भारत को विशिष्ट प्रकार का लोकतंत्र अंग्रेजी शासकों के दौरान प्राप्त हुआ था और उसे भारत ने पूरी सक्रियता से अपना लिया था। फुकुयामा ने जिन तीन स्तंभों पर ज़ोर दिया है, उनमें से एक स्तंभ लोकतांत्रिक जवाबदेही है जो भारत में काफी सुदृढ़ है। भारत में भी कानून-व्यवस्था का काफी हद तक पालन किया जाता है। और यहां, जैसाकि फुकुयामा ने ज़ोर देकर कहा है कि हमें इस दिशा में एक लंबा रास्ता तय करना है, जिसे सरकार की हैसियत से (और मेरा कहने का तात्पर्य है कि एक रेगुलेटर अर्थात भारतीय रिज़र्व बैंक को भी) गवर्नेंस तथा लोक सेवाओं का कार्य करना है।

यह कहने का आशय यह नहीं है कि हमने केंद्र एवं राज्य सरकार में कई क्षेत्रों में अच्छे कार्य नहीं किए हैं - चाहे वह नई दिल्ली मेट्रो बनाने का कार्य रहा हो, या तमिलनाडु में लोक वितरण प्रणाली को लोगों तक पहुंचाने का कार्य रहा हो, या तीव्र गति से प्रधानमंत्री जन-धन-योजना को लागू करना रहा हो - लेकिन इस प्रकार की क्षमताएं प्रत्येक राज्य की हरेक तहसील में उत्पन्न होनी चाहिए। इसके अलावा, सरकारी और विनियमन के अनेक क्षेत्रों में, जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रही है, हमें और अधिक विशेषज्ञों की ज़रूरत है, जिन्हें डोमेन का ज्ञान और अनुभव हो। उदाहरण के लिए समस्त सरकारी तंत्र में बढ़ती हुई संख्या में अच्छे प्रशिक्षित अर्थशास्त्री हों, और ऐसे भारतीय आर्थिक सेवा के अधिकारी बहुत कम हैं जो अन्य देशों में भी जाते हों।

अन्य देशों के ऐतिहासिक अनुभव से एक महत्वपूर्ण अंतर का यह पता चलता है कि अन्य स्थानों पर पहले मजबूत सरकार अस्तित्व में आती है और उसके बाद उसका नियंत्रणा कानून-व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक जवाबदेही से होता है । भारत में आज स्थिति इसके विपरीत है, जहां सुदृढ़ संस्थाएं जैसे न्यायालय, विरोधी पार्टियां, मुक्त प्रेस, एनजीओ हैं जिनका उद्देश्य सरकारी अतिशयता को रोकना है। हालांकि कभी-कभी यह पता करना मुश्किल होता है कि अतिशय सरकारी कार्य क्या है। हमें सरकार (रेगुलेटरी भी) की क्षमता को सुदृढ़ करना होगा और क्षमता-निर्माण की बुनियाद मज़बूत होने से पहले अनेक स्तरों पर जांच परख करने से परहेज़ करना होगा। हमें एक खुशमिज़ाज माध्यम अपनाना होगा जिनके लिए प्रशासन को बेरोक-टोक और पूरी तरह से प्रणाली को ठप्प कर देने के बीच की शक्तियां प्रदान करनी होंगी, जिसमें हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारा कार्य पश्चिमी देशों से भिन्न है क्योंकि जब उनका विकास हुआ था तब उनकी या अन्य एशियाई अर्थव्यवस्थाओं की परिस्थितियां भिन्न थीं और उनके मकसद अलग थे।

उदाहरण के लिए एक कारोबार की प्रक्रिया जिसमें यह आवश्यक है कि दूस्दराज के क्षेत्रों में कई सरकारी सर्वेक्षण कराए जाएं लेकिन उसके लिए यह भी विचार करना जरूरी है कि हमारी प्रशासनिक क्षमता भी उतनी हो कि वह उन सर्वेक्षणों को सही प्रकार से और समय पर कर सके। यदि उसके लिए पर्याप्त क्षमता नहीं प्रदान की जाती है तो यह तय है कि वह कार्य आगे नहीं बढ़ेगा। इसी

प्रकार, यदि हम सरकारी या विनियामकीय कार्यों के लिए अनेक अपीलीय प्रक्रियाएं बनाते हैं जो धीमी तथा भेद न करने वाली हों, तो हम सरकारी अतिशयता को नियंत्रित कर सकते हैं, किंतु इसमें इस बात का भी जोखिम है कि इससे आवश्यक सरकारी कार्रवाई में रुकावट पैदा हो सकती है। यदि सरकार या रेगुलेटर मामला तैयार करने में निजी पार्टियों की तुलना में कम कारगर है तो अपीलीय प्रक्रिया बजाय न्याय प्रक्रिया की खामी को दूर करने के काफी हद तक उनके पक्ष में होती है जिनके पास उनका उपयोग करने के संसाधन होते हैं। इसलिए यदि हम सुधार लाना चाहते हैं तो एक ऐसे देश में जहां प्रशासनिक क्षमता बहुत बड़ी है वहां सैद्धांतिक आदर्श किस प्रकार से कार्य करेंगे, की सोच से हटकर इस बात पर विचार करना होगा कि वे सिद्धांत किस प्रकार से वास्तविक भारतीय परिस्थिति में कार्य कर सकेंगे। मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि हमें ''जांच व परख'' की जरूरत है लेकिन हमारी जांच संतुलित होनी चाहिए। हमने लाइसेंस परमिट राज इसलिए नहीं समाप्त किया था कि हम अपीलीय राज में आकर उलझ जाएं।

अंतिम बात यह है कि पूरे देश में हाल में जो प्रगति हुई है उसमें प्रसन्नता की बात यह है कि अधिकांश लोक शिक्षित हैं और उनमें प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता है। भारतीय रिज़र्व बैंक में एक बढ़िया अनुभव हमारे श्रेणी IV कर्मचारियों के बच्चों से मुलाकात करना रहा है, जिनमें से कई बच्चे निजी क्षेत्र की फर्मों में बिजनेस एक्जीक्यूटिव हैं। जैसे-जैसे शिक्षा ने पूरे देश में हमारे नवयुवकों को आर्थिक तलाश के लिए कहीं भी जाने-आने के योग्य बना दिया है, वहीं पर मुक्त उद्यमिता प्रणाली के लिए सरकार का समर्थन बढ़ गया है। इसीलिए राजनीतिक संवाद बढ़ने से न केवल हैंडआउट दिए जा रहे हैं बल्कि नये रोजगार पैदा हो रहे हैं। जब तक हम उदारीकरण की गति को आर्थिक क्षमता बढ़ाने की गति के साथ बढ़ाते रहेंगे तब तक हमें सुधार के लिए लोगों का समर्थन प्राप्त होता रहेगा। इसका आशय यह भी है कि यदि हम चार स्तंभों को खड़ा करना चाहते हैं जो समृद्धि के लिए सहायक होंगे और हमारे समाज में राजनैतिक स्वतंत्रता को मज़बूत बनाएंगे तो हमें बड़े पैमाने पर हमारे लोगों के बीच आर्थिक क्षमताओं के समान वितरण का पोषण सुनिश्चित करना होगा। आर्थिक समावेशन से मेरा मतलब यह कि हमारे सभी नागरिकों के लिए अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन, अच्छे स्वास्थ्य, पर्याप्त वित्त तथा बाज़ार की उपलब्धता हो, जो वहनीय प्रगति के लिए आवश्यक है। निःसंदेह यह एक नैतिक अनिवार्यता भी है।